(धन्यवाद)

हम इस गुण ग्राहकता का कोटिशः धन्यवाद देते हैं कि इस पुस्तक के छपाने में हमको श्रीमान् लाला मालूमल साहिब ऋषिरद स्थान खरड़ ज़िला अम्बाला निवासी ने द्रव्य द्वारा सहायता दी ॥

धन्यवाददाता
ज्योतिषरत्न जीयालाल
फ़र्रुख़नगर

(भूमिका)

अथ श्रीजैनसुधाबिन्दु लिख्यते

दोहा—जयति जयति आदीश प्रभु गुण अनन्त भंडार।
तुव पदरज शिर धार भवि उतरे भव दधि पार ॥ १
दयानन्द की योग्यता पक्षपात हठ द्वेष।
सुधाबिन्दु को देखिये संसय रहै न शेष ॥ २ ॥

विदित हो कि दयानन्द सरस्वती ने अपने जीवन समय में जितने ग्रन्थ लेखादि प्रकाशित किये उन पर नाम मात्र संक्षिप्त समालोचना तो पुस्तक "दयानन्द छल कपट दर्पण„ के प्रथम भाग मेंही लिखी गई है. और "सत्यार्थ प्रकाश„ वा अन्यान्य स्वामी जी रचित जितनी पुस्तक हैं उन सब का यथार्थ उत्तर उक्त पुस्तक के दूसरे भाग में लिखा गया है, परन्तु वह पुस्तक आकार में बहुत बढ़ गई है, जिसके छपने में यथार्थ द्रव्य व्यय करने का अभाव समझ कर हम यह उचित समझते हैं कि उक्त पुस्तकांतरगत जो लेख नवीन और पुराचीन "सत्यार्थ प्रकाश„ के द्वादश समुल्लास के उत्तर में है, और उस लेख का केवल जैनी लोगोंही से सम्बन्ध है, "जैनसुधाबिन्दु„ नाम से जुदा पुस्तकाकार थोड़े से व्यय में मुद्रित करा कर प्रकाशित किया जाय जिस से "सत्यार्थ प्रकाश„ द्वादश समुल्लास के खण्डन के अभिलाषी जैनियों को निराश होना वा अधिक समय के लिये विलम्ब सहना न पड़े. और रसिक गण इससे यथार्थ लाभ उठावें. इसलिये इस पुस्तक के पूर्वार्द्ध द्वारा प्रथम वार के छपे और उत्तरार्द्धद्वारा दूसरी तीसरी वार के छपे "सत्यार्थ प्रकाश„ के द्वादश समुल्लास में जो लेख है उसका यथार्थ उत्तर दिया जाता है, आशा है कि पाठक गण सत्यासत्य का निर्णय कर प्रसन्न होंगे। और जो लेख "सत्यार्थ प्रकाशांतरगत स्वामी जी का हम लेवेंगे„ उसकी आदि में (द) और अपनी समीक्षा की आदि में (स) यह सम्बोधन का चिन्ह लिखेंगे पाठक गण इसी पर ध्यान देवें। किंबहुना ॥

फ़र्रुखनगर ज़िला गुरगांव
कार्तिक शुक्ला० ५ भृगुवासरे
सम्वत् १९५१ विक्रमी

भवदीय सदसद विवेकी
[illegible] दीपचन्द्र चौधरी

अथ जैनसुधाबिन्दु पूर्वार्द्ध भाग लिख्यते ॥

दोहा — आदि जिनेश्वर युगल पद वन्दू शीश नमाय।
जैनसुधा की बून्द का देवहु पान कराय ॥ १ ॥
दयानन्द निज ग्रन्थ में निन्दे धर्म्म अपार।
जैन विषय जो लेख है तसु उत्तर यह सार ॥ २ ॥

प्रथम बार के छपे "सत्यार्थ प्रकाश,, पृष्ठ ३९६ पंक्ति १ से ४ तक में स्वामी जी लिखते हैं ॥

(द) अथ जैन मत विषयं व्याख्यास्यामः ॥ सब सम्प्रदायों से जैन का मत प्रथम चला है, उसको साढ़े तीन हज़ार वर्ष अनुमान से भये हैं, जो उनके २४ तीर्थङ्कर अर्थात् आचार्य भये हैं, जैनेन्द्र, पार्श्वनाथ, ऋषभदेव, गौतम और बौधादिक उनके नाम हैं ॥

(स) "सत्य की जड़ हरी,, प्यारे पाठक गण! सत्य भी कैसा स्वभाविक गुण वाला अनमोल रत्न है, जिसकी गन्ध त्रैलोक्य में फैल रही है, देखो सब सम्प्रदायों से प्रथम होना जैन का स्वामीजी भी स्वतः स्वीकार करते हैं, "कूरावही सराहिये जो वैरी करें वखाण,, परन्तु उक्त स्वामी जी का यह लिखना कि जैनी साढ़े तीन हज़ार वर्ष से हैं, प्रमाण रहित मनोक्त और सर्वथा व्यर्थ है, और इसी कारण स्वामी जीने दूसरी तीसरी वार के छपे "सत्यार्थ प्रकाश,, में इसको नहीं लिखा, और जैनेन्द्र, पार्श्वनाथ, गौतम, बौध, यह नाम जैनियों के चौबीसों तीर्थङ्करों में से किसी के भी नहीं, यह लिखना भी स्वामी जी का स्वकपोल कल्पना और सर्वथा झूंठ है ॥

फिर पृष्ठ ३९६ पंक्ति ४ से २२ तक यह लिखा है ॥

(द) उन्होंने अहिंसा धर्म्म परम माना है इस विषय में वे ऐसा कहते हैं कि एक बिन्दु जल में अथवा एक अन्न के कण में असंख्याते जीव हैं, उन जीवों के पांख आजावें तो एक बिन्दु और एक कण के जीव ब्रह्माण्ड में न समावें इतने हैं इससे मुख के ऊपर कपड़ा बांध रखते हैं, जल को बहुत छानते हैं, और सब पदार्थों को शुद्ध रखते हैं और ईश्वर को नहीं मानते ऐसा कहते हैं कि जगत् स्वभाव से सनातन है, और सिद्ध होता है तब उसका नाम केवली रखते हैं और उसीको ईश्वर मानते हैं, अनादि

ईश्वर कोई नहीं है किन्तु तपोबल से जीव ईश्वर रूप हो जाता है. जगत् का करता कोई नहीं जगत् अनादि है जैसे घास वृक्ष पाषाणादिक पर्वत बनादिकों में आपसे आपही होजाते हैं ऐसे पृथिव्यादिक भूत भी आपसे आप बन जाते हैं, परमाणु का नाम पुद्गल रक्खा है जो पृथिव्यादिकों को पुद्गल मानते हैं, जब प्रलय होता है तब पुद्गल जुदे जुदे होजाते * और जब वे मिलते हैं

---

* जितने लेख के नीचे लकीर खैंची गई है, उसकी पुष्टी के लिये स्वामी जी अपने ४ नवम्बर सन् १८८० ई० के पत्र में आत्मा राम जीको लिखते हैं कि "मैंने ठाकुरदास जीके ज़वाब में एक पत्र आर्य्यसमाज गुजरान वाला की मारफ़त भेजा था जो आप के पास भी पहुँचा होगा उसमें यह जतलाया गया है कि जैन बौद्ध दोनों एकही हैं, और इसमें स्वामी जी पुस्तक "विवेकसार" पृष्ठ ६५ पं० १२ तथा पृष्ठ ११२ पं० ७ पृष्ठ १३७ पं० ८ पृष्ठ १३८ पृष्ठ १५२ पं० १४ का प्रमाण देकर लिखते हैं कि इस तरह आपके ग्रन्थों में कथा साफ़ साफ़ मौजूद हैं जिसको कोई श्रावक बर्खिलाफ़ न कर सकेंगे, और ठाकुरदास की पहिली चिट्ठी में आप लोग कई श्लोक मंजूर कर चुके हैं, तत्पश्चात् स्वामी जी राजा शिवप्रसाद रईस बनारस कृत इतिहास तिमिरनाशिक की भूमिका से जैन बौद्ध को एक बतलाते हैं सो प्रथम तो "विवेकसार" ग्रन्थ जैनियों का कोई सूत्र सिद्धान्त नहीं है दूसरे उसका यथार्थ आशय स्वामी जी की समझ में भी नहीं आया और जो वाक्य स्वामी जीने ठाकुरदास के विषय लिखे उसके उत्तर में ठाकुरदास अपनी २२ नवम्बर सन् १८८० ई० की चिट्ठी में लिखते हैं कि "भला स्वामी जी मैंने किस पत्र में स्वीकार लिया है ऐसा झूठ बोलना छल करना आपको किसने सिखलाया आप इसी प्रकार धोखेबाज़ी करते हैं" और राजा शिवप्रसाद जी का पत्र जो 'दयानन्द छल कपट दर्पण' प्रथम भाग में छपा है उससे स्पष्ट स्वामी जी का यह कहना मिथ्या सिद्ध होता है कि जैन बौद्ध एकही हैं॥

तब पृथिव्यादिक स्थूल भूत बन जाते हैं और जीव काल योग से अपना २ शरीर धारण कर लेते हैं जैसा जो कर्म करता है उस को वैसा फल मिलता है आकाश में चौदह राज्य मानते हैं उसके ऊपर जो पद्म शिला उसको मोक्ष स्थान मानते हैं जब शुभ कर्म जीव करता है तब उनके कर्मों के वेग से चौदह राज्यों को उलंघन करके पद्म शिला के ऊपर विराजमान होते हैं चराचर को अपनी ज्ञान दृष्टि से देखते हैं फिर संसार दुःख जन्म मरण में नहीं आते वहीं आनन्द करते हैं ऐसी मुक्ति जैन लोग मानते हैं॥

(ख) यह लिखना स्वामी जी का सर्वथा सत्य है कि जैनी लोग अहिंसा को परम धर्म मानते हैं, एक विन्दु जल में असंख्याते जीव कहते हैं जल को वस्त्र छान कर पीते हैं और सब पदार्थों को शुद्ध रखते हैं, जगत् का करता किसी को नहीं मानते जीव कर्म्मानुसार शरीर पाते हैं जैसा जो कर्म्म करता उसको वैसा फल मिलता है पद्मशिला (मोक्ष) में गया जीव ज्ञान दृष्टि से चराचर को देखता है, और फिर संसार दुःख जन्म मरण में नहीं आता वहीं आनन्द करता है॥

पाठक वृन्द ध्यान लगा कर सुनो कि अहिंसा की जननी दया है, और दया का भंडार धर्म्म है इससे क्या सिद्ध हुआ कि जहां दया तहां धर्म्म, और इसको तो सर्व साधारण लोग प्रमाण करते हैं॥

दोहा॥

दया धर्म्म को मूल है पाप मूल अभिमान।
मन में दया न त्यागिये जब लग घट में प्राण॥ १॥

भला एक बिन्दु जल में असंख्याते जीवों का होना जो इनका यथार्थ भेद ज्ञान गम्य है, जब तक पक्षपात रूपी चश्मा आंखों से हटा कर किसी पूर्ण गुरु का सत्सङ्ग न किया जायगा यथार्थ भेद पाना कठिन है, जैसे एक बीज में अपने सदृश अनन्त बीज उत्पन्न करने की सत्ता है उसको क्या नहीं समझना सर्वसाधारण प-

प्रकट है इसी प्रकार एक जल विन्दु में रहे असंख्य जीव सत्य सिद्धान्त के जानने वाले उत्तम गुरु के उपदेश - विना समझ में नहीं आसकते, और विना समझे इस पर तर्क करना ऐसा है, जैसे मूर्ख मनुष्य चन्द्रमा को स्थाली समझ उसके लेने का यत्न करे और न मिलने पर दुखी होता है, जल छान कर काम में लाना यह अति उत्तम कर्म्म है, जिसको सब कोई मानता है किन्तु आपने भी मनु का यह वचन कि "वस्त्रपूतंजलंपिवेत,, नवीन "सत्यार्थ प्रकाश,, पृष्ट ३४ पंक्ति २७ में ग्रहण किया है, तथा पदार्थों का शुद्ध रखना मनुष्य मात्र का धर्म्म है जो मनुष्य भी पशुओं के सदृश शुद्धाशुद्ध का ध्यान न करें तो उनमें और पशुओं में अन्तर ही क्या रहे ॥ उक्तंच ॥ आहारनिद्राभयमैथुंनच । समान मेतत्पशुभिर्नराणाम् ज्ञानोहितेषांमधिको विशेषो । ज्ञानोनहीनाः पशुभिस्समाना ॥ १ ॥

और जीव कर्त्ता होने के विषय जैन के शास्त्रों में असंख्य लेख विद्यमान हैं यहां विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि करता की इच्छा बिना किसी भी कार्य्य का आरम्भ नहीं होसकता और जहां इच्छा सिद्ध होगी वहां सर्व शक्तिमान आदि सद्गुणों का अभाव सिद्ध होकर ईश्वर की ईश्वरता का अभाव होजायगा और अनेक विद्वानों का कथन है कि जक्त मिथ्या भ्रम मात्र ही है, सो जो वस्तु स्वतः मिथ्या है उसका करता परम पवित्र सत्य स्वरूप परमात्मा क्योंकर सम्भवे, इसलिये किसी कर्त्ता व्यक्त का न होना अनेक प्रमाणों से सिद्ध और युक्त २ है, परन्तु यह लिखना स्वामी जी का सर्वथा झूठ है कि जैनी लोग ईश्वर को नहीं मानते, जैन शास्त्रों में तो ईश्वर के गुण लक्षण जैसे चाहियें वैसे पृथक् शास्त्र में विस्तार सहित वर्णन किये हैं, और जो जैसा कर्म्म करता है उसको वैसा फल मिले यह तो सर्व साधारण का कथन है, किन्तु निज पुस्तक "सत्यार्थ प्रकाश,, में स्वामी जी भी अनेक स्थान पर कर्म्मानुसार फलाफल मानते हैं, और मोक्ष में गये जीव का पुनः लौट आना केवल स्वामी जी के व्यतिरिक्त और

किसी भी विद्वान ने नहीं माना, इससे स्वामी जी का तर्क व्यर्थ है जो मोक्ष में जाकर भी जीव लौट आया तो मोक्ष क्या हुई स्त्री का पीहर होगया जब मन चाहा चली गई पति याद आया सासरे लौट आई। और स्वामी जी उक्त मुख वस्त्रिका पर तर्क करते हैं जो ढूंढ़िये लोग मुख पर रखते हैं, इससे स्वामीजी का व्यर्थ द्वेष सिद्ध होता है, क्योंकि व्यर्थ रज जन्तु आदि के बचाव के लिये ऐसा करने में कुछ हानि नहीं क्या जब वर्षा ऋतु में मच्छरादि अनेक सूक्ष्म जीवों की अधिकता होती है तो सर्व साधारण जन उनको मुख चक्षु नासिकादि से बचावने के लिये वस्त्रादिक की सहायता नहीं लेते? और बिना सहायता लिये विवेकी जन नहीं रहते विद्वान् पुरुष अपरचित मार्ग में पांव नहीं बढ़ाते, स्वामी जी शुद्ध सनातन परम पवित्र जैन धर्म्म का भेद जाने बिनाही व्यर्थ गाल बजाते हैं यह नहीं समझते कि जैनी लोग प्रसाद किसको कहते हैं, पुद्गल किसको मानते हैं, चौदह राज्य क्या वस्तु है? बिना समझे मनमाना लिख मारा, क्योंकि चौदह राज्य नहीं किन्तु राजू हैं, और राजू नाम एक माप करने के पैमाने का है, किसी राजधानी वा लोक का नहीं है, और उसमें भी आकाश पाताल सब मिला कर यह गणना है, केवल आकाश पर चौदह राजू मानना यह स्वामी जी का भ्रम है बिना किसी जैन शास्त्र के देखे पढ़े जो कुछ झूठ सच सुना सुनाया वही लिख मारा यह न समझे कि विद्वान् पुरुष इसको देख कर क्या कहेंगे॥

पुनः पृष्ट ३८६ पंक्ति अन्तिम से लेकर पृष्ट ३८७ पंक्ति १ तक लिखा है॥

(प्र) और जैनी ऐसा भी कहते हैं कि धर्म्म जो है सो जैन का ही है और सब हिंसक हैं, तथा अधर्म्मी क्योंकि जो हिंसा करते हैं वे धर्मात्मा नहीं॥

(उ) यहां विशेष लिखने की कुछ आवश्यकता नहीं जब पक्षपात छोड़ कर सत्यासत्य का निर्णय किया जाय तो स्वतः सिद्ध हो

सकता है कि सनातन और सच्चा धर्म्म क्या है?॥

पुनः पृष्ठ ३९७ पंक्ति २ से पृष्ठ ३९८ पंक्ति २ तक स्वामी जी लिखते हैं॥

(द) जो यज्ञ में पशु मरते हैं और ऐसी २ बातें कहते हैं कि यज्ञ में जो पशु मारा जाता है सो स्वर्ग में जाता होय तो अपना पुत्र वा पिता को न मार डालें स्वर्ग को जाने के वास्ते ऐसे २ श्लोक उनने बना रक्खे हैं "त्रयोवेदस्यकर्तारोधूर्तभांडनिशाचराः," इसका यह अभिप्राय है कि ईश्वर विषय की जितनी बात वेद से हैं वे धूर्त की बनाई हैं जितनी फल स्तुति अर्थात् इस यज्ञ को करें तो स्वर्ग में जाय यह बात भांडों ने बना रक्खी हैं, और जितना मांस भक्षण पशु मारने की विधि है वेद में सो राक्षसों ने बना लिया है, क्योंकि मांस भोजन राक्षसों को बड़ा प्रिय है सब बात अपने खाने पीने और जीविका के वास्ते लोगों ने बनाई हैं, और जैन मत है सो सनातन है और यही धर्म्म है इसके विना किसी को शुभ गति वा सुख कभी नहीं होसकता ऐसी २ वे बातें कहते हैं। इनसे पूछना चाहिये कि हिंसा तुम लोग किसको कहते हो? जो वे कहैं कि किसी जीव को पीड़ा देना सो तो विना पीड़ा के किसी प्राणी का कुछ व्यवहार सिद्ध नहीं होता क्योंकि आप लोगों के मत में ही लिखा है कि एक बिन्दु में असंख्यात जीव हैं उसको लाख वस्त्र छाने तो भी वे जीव पृथक् नहीं होसकते फिर जलपान अवश्य किया जाता है तथा भोजनादिक व्यवहार और नेत्रादिकों की चेष्टा अवश्य किई जाती है फिर तुम्हारा अहिंसा धर्म्म तो नहीं बना (प्रश्न) जितने जीव बचाये जाते हैं उतने बचाते हैं जिसको हम लोग देखते नहीं उनकी पीड़ा में हम लोगों को अपराध नहीं (उत्तर) ऐसा व्यवहार सब मनुष्यों का है जो मांसाहारी हैं वे भी अश्वादिक पशुओं को बचा लेते हैं वैसे तुम लोग भी जिन जीवों से कुछ व्यवहार का प्रयोजन नहीं है जहां अपना प्रयोजन है वहां मनुष्यादिकों को नहीं बचाते हो फिर तुम्हारी अहिंसा नहीं

रही (प्रश्न) मनुष्यादिकों को ज्ञान है ज्ञान से वे अपराध करते हैं इससे उनको पीड़ा देने में कुछ अपराध नहीं पशुआदिक जीव बिना अपराध हैं उनको पीड़ा देना उचित नहीं (१) (उत्तर) यह बात तुम लोगों की विरुद्ध है क्योंकि ज्ञान वालों को पीड़ा देना और ज्ञान हीन पशुओं को पीड़ा न देना यह बात विचार शून्य पुरुषों की है क्योंकि जितने प्राणी देहधारी हैं उनमें से मनुष्य अत्यन्त श्रेष्ठ है सो मनुष्यों का उपकार और पीड़ा का न करना सब को आवश्यक है॥

(च) इस विषय में हम संसारिक यह कहलावत (प्रातःकाल का भूला सायङ्काल अपने घर आवे तो उसको भूला हुआ न कहना) स्वामी जी के नवीन "सत्यार्थ प्रकाश,, में जब मांस भक्षण का प्रगट निषेध देखते हैं वा पुस्तक गोकरुणा निधि में भी मांस खाने को बुरा लिखा देखते हैं तो यही सिद्ध होता है कि प्रथम बार के छपे "सत्यार्थ प्रकाश,, में मांसभक्षण के बुरा कहने पर जो लेख लिखा गया है वह स्वामी जी का अज्ञान हठ था क्योंकि पुस्तक गोकरुणानिधि में स्वामी जीने स्वतः यह लिखा है॥

"कदाचित कोई कहे कि पशु को स्वयं मार कर खाने में दोष होगा बाज़ार से लेकर खाने में नहीं, यह भी समझ ठीक नहीं मनुजी ने आठ प्रकार के हिंसक लिखे हैं, जैसे (उक्तंच) "अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रय विक्रयी। संस्कर्ता चोपहर्ता च खादकश्चेतिघातिकाः,, अर्थ अनुमति (मारने की सलाह) देने मांस के काटने पशु आदि के मारने, उनको मारने के लिये लेने और

---

(१) जितने लेख के नीचे लकीर खैंची गई है, उसके मंडनार्थ स्वामीजी अपने ४ नवम्बर सन् १८८० ई० के पत्र में लिखते हैं कि इसका प्रमाण जैन के "विवेकसार,, ग्रन्थ में है, परन्तु यह कहना स्वामीजी का सर्वथा झूठ है, प्रथम तो "विवेकसार,, जैन धर्म का मूल सिद्धान्त वा माननीय ग्रन्थ नहीं, दूसरे उसमें स्वामी जी के पक्ष की पुष्टि करने वाला कोई भी विषय नहीं॥

बेचने, मांस के पकाने और परसने और खाने वाले आठ मनुष्य घातक हिंसक अर्थात् ये सब पापकारी हैं, और भैरव आदि के निमित्त से भी मांस खाना मारना वा मरवाना महापाप कर्म है इसीलिये दयालु परमेश्वर ने वेदों में मांस खाने वा पशुआदि के मारने की विधि नहीं लिखी, मद्य भी मांस खाने काही कारण है, इसलिये यहां संक्षेप से थोड़ा सा लिखा है॥

मांसाहारीम और मद्यपि मनुष्य विद्यादि शुभ गुणों से रहित होकर और इन दोषों में फँसकर अपने धर्म्म अर्थ काम और मोक्ष फलों को छोड़ पशुवत् अहार निद्राभय मैथुन आदिक में प्रवृत्त होकर अपने मनुष्य जन्म को व्यर्थ कर देते हैं, इसलिये कोई भी मादक पदार्थ सेवन न करना चाहिये॥

तथा शिव पुराण भागवत पद्म पुराणादि अनेक शास्त्रों में मांस भक्षण का निषेध है परन्तु स्वामीजी महाभारत और वाल्मीकीय रामायण के व्यतिरिक्त और किसी को प्रमाण नहीं मानते इसलिये हम महाभारतही से कुछ लिखते हैं॥

सत्येनोत्पद्यतेधर्म्मः दयादानेनवर्धते।
क्षमयास्थाप्यतेधर्म्मः क्रोधलोभाद्विनश्यति॥ १ ॥
अहिंसासत्यमस्तेयम् त्यागमैथुनवर्जनम्।
पंचस्वेतेषुधर्म्मेषु सर्वधर्म्मोप्रतिष्ठिताः॥ २ ॥
सर्ववेदानतत्कुर्युः सर्वयज्ञाश्चभारतः।
सर्वतीर्थोभिषेकाश्चः यत्कुर्यात्प्राणिनांदया॥ ३ ॥
अहिंसालक्षणोधर्म्मः अधर्म्मप्राणिनांवधः।
तस्मात्धर्म्मार्थिभिर्लोकैः कर्तव्याप्राणिनांदया॥ ४ ॥
नशोणितात्दूतवस्त्रं शोणितेनैवशुध्यति।
शोणितात्दूषयात्वस्त्रं शुद्धंभवतिवारिणा॥ ५ ॥
श्रुवंप्राणवधोयज्ञे नास्तियज्ञोस्त्वहिंसकः।
ततोऽहिंसात्मको कार्यः सदायज्ञयुधिष्टरः॥ ६ ॥
इंद्रियाणिपशुन्कृत्वावेदिंकृत्वातपोमयीः।
अहिंसामाहुतकृत्वा, आत्मयज्ञंयजाम्यहं॥ ७ ॥

ध्यानाग्नौजीवकुण्डस्थे ज्ञानमारुतदीपिते ।
असत्कर्मधनंक्षिप्ते अग्निहोत्रंकुरुतमं ॥ ८ ॥

(इसका भाषार्थ) सत्य से धर्म्म की उत्पती और दयादान से वृद्धि तथा क्षमा से स्थिरता और क्रोध लोभादिक से नाश होता है ॥ १ ॥ अहिंसा में, सत्य में, चोरी त्याग, मैथुन त्याग, परिग्रह प्रमाण, इन पांच धर्म्म कार्य्यों में सर्व प्रकार के धर्म्म समाये हुये हैं ॥ २ ॥ सर्व वेद पढ़ो वा अनेक यज्ञ करो वा सर्व तीर्थ स्नान करो परन्तु प्राणियों की दया विना सर्व कार्य्य अफल है और प्राणियों की दया इन सब से उत्तम है ॥ ३ ॥ अहिंसा धर्म्म का लक्षण है और अधर्म्म का लक्षण प्राणियों का वध इसलिये प्राणियों पर दया करनी यही उत्तम है ॥ ४ ॥ रक्त में रँगा हुआ वस्त्र रक्त से धोने पर साफ़ नहीं होता, इसी प्रकार हिंसा से पाप नहीं हटता, दया धर्म्म से शुद्ध होता है ॥ ५ ॥ यज्ञ में निश्चय से प्राणियों का वध होता है इसलिये हिंसक यज्ञ नहीं करना किन्तु हे युधिष्टर अहिंसात्मक यज्ञ करनाही योग्य है ॥ ६ ॥ पांचों इन्द्रियों को पशु मानना और तपरूप वेदिका उसमें दया मई आहुति देकर आत्म यज्ञ करना यही उत्तम है ॥ ७ ॥ ध्यान रूपी अग्नि को जीव रूपी कुण्ड में प्रज्वलित कर असत्य कर्म्म रूपी काष्ट डालना यही सत्य अग्नि होत्र है ॥

"त्रयो वेदस्य कर्तारो धूर्त भांड़ निशाचराः,, यह श्लोक स्वामी जीने पुस्तक "सर्व दर्शन संग्रह,, में लेकर इस को जैनों का बनाया लिखा और इसीके आश्रय पर "सत्यार्थ प्रकाश,, का एक पूरा पृष्ट ३९७ का भर दिया है, परन्तु यह श्लोक चार्वाक नास्तिक का है जिसका 'जैन' से कुछ सम्बन्ध नहीं है, और नवीन "सत्यार्थ प्रकाश,, के द्वादश समुल्लास में पृष्ट ४०६ पर स्वामी जी इसको स्वतः चार्वाक मत का स्वीकार करते हैं इसलिये अब इस विषय में हमको विशेष लिखने की कोई आवश्यकता नहीं है ॥

पुनः पृष्ट ३९८ पंक्ति २ आगे स्वामीजी लिखते हैं कि—

(द) हिंसा नाम है वैर का सो योग शास्त्र व्यास जीके भाष्य

में लिखा है, सर्वथा सर्व भूतेष्वनभिद्रोहः अहिंसा यह अहिंसा धर्म का लक्षण है इसका यह अभिप्राय है कि सब प्रकार से सब काल में सब भूतों में अनभिद्रोह अर्थात् वैर का जो त्याग सो कहाता है अहिंसा आप लोग अपने संप्रदाय से तो प्रीति करते हो और अन्य संप्रदायों से द्वेष तथा वेदादिक सत्य शास्त्र तथा ईश्वर पर्यन्त आप लोगों को वैर और द्वेष है फिर अहिंसा धर्म आप लोगों का कहने मात्र है॥

(घ) यह लिखना स्वामी जी का सर्वथा मिथ्या है कि जैनीलोग अन्य संप्रदाय वालों तथा वेदादिक शास्त्रों और ईश्वर पर्यन्त से द्वेष रखते हैं, यदि यही मान लिया जाय कि हिंसा वैरही को कहते हैं तो जैनी लोग तो वैरभाव से सर्वकाल सर्वथा वञ्जितही रहते हैं, और जैन शास्त्रों में पद पद पर बैर भाव त्यागने का उपदेश है, फिर स्वामीजी का कथन मिथ्या नहीं तो और क्या है, पापी को पापी और चोर को चोर कहना तथा सदोष को सदोष कहना द्वेष नहीं है, परन्तु मलीनाचारी को महात्मा और अनेक दोष युक्त को ईश्वर कहना न्याय विरुद्ध और अनभिज्ञ मूर्खों का काम है, जैनी लोग ऐसे ईश्वर के उपासक हैं जो अष्टादश दोष रहित छयालीस गुण विराजमान हैं॥

(ङ) पृष्ठ ३९८ पंक्ति १० से स्वामी जी लिखते हैं कि

अपने संप्रदायों के पुस्तक तथा बात भी अन्य पुरुषों के पास प्रकाश नहीं करते हो यह भी आप लोगों में हिंसा सिद्ध है, ईश्वर को आप लोग नहीं मानते हैं यह आप लोगों की बड़ी भूल है, और स्वभाव से जगत् उत्पत्ति मानना यह भी तुम लोगों की झूठ बात है, इसका उत्तर ईश्वर और जगत् की उत्पत्ति के विषय में देख लेना॥

(च) यह लिखना स्वामी जी का उनकी अज्ञता सिद्ध करता है कि जैनी लोग अपनी संप्रदाय के पुस्तक तथा बात भी अन्य पुरुषों पर प्रकट नहीं करते। क्योंकि जैनी अपने शास्त्रों को छपाकर गलयारे की गेंद बनाना नहीं चाहते, हां! अपने सत्य और

धर्म्म की रक्षा करना मनुष्य मात्र का धर्म्म है. और ईश्वर को जैसा जैनी लोग मानते हैं, वैसा कोई भी धर्म्म वाला नहीं मानता जगत् की उत्पत्ति के विषय यथार्थ उत्तर आगे चल कर मिलेगा॥

(द) फिर पृष्ठ ३९८ के अन्त तक यह लिखा है कि—

प्रथम जीव का होना और साधनों का करना पश्चात् वह सिद्ध होगा जब जीवादिक जगत् विना कर्ता के उत्पन्नही नहीं होता और प्रत्यक्ष जगत् में नियमों के जगत् में देखने से सनातन जगत् का नियन्ता ईश्वर अवश्य है. फिर उसको ईश्वर नहीं मानना और साधनों से सिद्ध जो भया उसी को ईश्वर मानना यह बात आप लोगों की सब झूठ है आपसे आप जीव शरीर धारण कर लेते हैं, तो शरीर धारण में जीव स्वतंत्र ठहरे फिर छोड़ क्यों देते हैं, क्योंकि स्वाधीनता से शरीर धारण कर लेते हैं फिर कभी उस शरीर को जीव छोड़ेगाही नहीं जो आप कहो कि कर्म्मों के प्रभाव से शरीर का होना और छोड़ना भी होता है, तो पापों के फल जीव कभी नहीं ग्रहण करता क्योंकि दुःख की इच्छा किसी को नहीं होती सदा सुख की इच्छाही रहती है, जब सनातन न्यायकारी ईश्वर कर्म फल की व्यवस्था का करने वाला न होगा तो यह बात कभी न बनेगी। (स) ईश्वर को करता मानने में जीव का करता भी ईश्वर ही मानना पड़ेगा. और जब जीव का करता ईश्वर कोही माना गया तो यह बात प्रत्यक्ष प्रमाण से प्रतिकूल है, क्योंकि कार्य्य अपने उपादान कारण से भिन्न नहीं होता, जब सब जीवों का उपादान कारण ईश्वर है, तो जीव ईश्वर की एकता में क्यों अन्तर मानते हो? और ईश्वर की इच्छा के प्रतिकूल जीव क्यों देखे जाते हैं? इसलिये जीव अनादि है. इसका करता ईश्वर नहीं. यदि करता हरता ईश्वर कोही माना जाय तो उसकी ईश्वरता में बड़ा भारी कलङ्क लग जाय, क्योंकि प्रथम तो एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य का घात कराना, फिर घातिक को राजद्वार से फांसी दिलाना, यदि दोनों काम्म एक ईश्वर होके हैं तो वह अन्याई है,

और जो एक कार्य्य ईश्वर ने किया, दूसरा जीव ने किया, तब ईश्वर में सर्वज्ञता सर्वशक्ति मानी इन गुणों का अभाव हुआ जिसका उपादान कारण नहीं है, वह कार्य्य नहीं हो सकता इसी प्रकार जगत का उपादान कारण हैही नहीं, तो उसकी उत्पति क्योंकर संभवे, यहां कोई यह कहे कि ईश्वर की जो (शक्ति) माया है वही जगत् का उपादान कारण है, तब हम पूछते हैं कि वह शक्ति ईश्वर से भिन्न है, वा अभिन्न ? जो कहोगे कि भिन्न है तो प्रश्न करेंगे जड़ है, वा चेतन ? तुम कहोगे जड़ है तो हम पूछेंगे नित्य है, वा अनित्य ? आप कहोगे नित्य है, तब तो आप का यह कहना (कि सृष्टि से पहिले केवल ईश्वरही था) असत्य होजायगा। और जो कहोगे अनित्य है तो उसका उपादान कारण और ईश्वर की शक्ति हुई तिस शक्ति को उत्पन्न करने वाली और शक्ति इसी प्रकार करने से अनवस्था दूषण आता है, और जो यह कहोगे कि ईश्वर की शक्ति ईश्वर से भिन्न नहीं है तो फिर सर्व पदार्थ ईश्वर मई समझने होंगे, और ऐसा समझने पर भले बुरे का ज्ञान स्वर्ग, नरक, पाप पुण्य, धर्म, अधर्म, ऊंच, नीच, राजा राङ्क सुख दुःखादि सब ईश्वर मई अर्थात् ईश्वर ही है, तो संसार की व्यवस्था किसके लिये है, तथा वेदादिक का उपदेश ऋषियों का जन्म क्यों हुआ ? और उसने जगत् को किस इच्छा से बनाया ? और बिना इच्छा के बनाना तो किसी प्रकार भी सिद्ध नहीं जो इच्छा से बनाया तो वह सर्व शक्तिमान नहीं इसलिये ईश्वर को जगत् का कर्ता कहना सर्वथा अनुचित है, यदि यह कहोगे कि ईश्वर सर्व शक्तिमान है वह उपादान कारण के बिनाही सृष्टि रच सक्ता है तो यह सम्भव नहीं, क्योंकि उपादान कारण बिना कार्य्य की सिद्धि नहीं होती, इस विषय में अधिक देखना हो तो पुस्तक सृष्टि खण्डिणी में देख ले। और स्वामी जी का यह लिखना कि जीव पाप के फल भोगना नहीं चाहता, और सदैव सुख की आशा रखता है, इस कहने से तो स्पष्ट सिद्ध है कि

जीव का प्रबन्ध ईश्वर के हाथ में नहीं किन्तु उसके कर्माधीनही है, क्योंकि जो जैसा करता है उसका फल तदतही भोगता है, जैसे मिष्टान्न खाने वाले का मुख मीठा और नीम चावने वाले का मुख कड़वा होवे तो यह वस्तु के स्वभाव का फल है, ईश्वर परमात्मा का इसमें क्या दावा है! ॥

(ट) पृष्ट ३९९ पंक्ति १ से स्वामीजी लिखते हैं कि " आकाश में चौदह राज्य तथा पद्मशिला मुक्ति का स्थान मानना यहबात प्रमाण और युक्ति से विरुद्ध है, केवल कपोल कल्पना मात्र है, और उसके ऊपर बैठ के बराबर का देखना * और कर्म करे से वहां चला जाना यह भी बात आप लोगों की असत्य है ॥

(स) स्वामी जी महाराज चौदह राज्य भावार्थ राज्यधानी नहीं है किन्तु राज्य एक प्रकार की माप है, और जैनी लोग आकाश में चौदह राज नहीं मानते, किन्तु जैनशास्त्र के लेखानुसार तीन लोक की सम्पूर्ण रचना का प्रमाण चौदह राजूऊंचा है जिसमें नीचे सात राजू चौड़ा मध्य में एक राजू फिर ५ राजू फिर अंत में एक राजू इस प्रकार चौड़ा है, और घनाकार इसका ३४३ राजू है। आपने सुना सुनाया गप्प सप्प जो मन में आया लिख मारा किसी जैन पुस्तक में ऐसा लेख नहीं है, और मोक्ष स्थान सिद्ध शिला कायथार्थ स्वरूप भी आप की समझ में नहीं आया फिर किस आशा पर तर्क करते हैं ॥

(ड) पृष्ट ३९९ में ऊपर लिखे लेख से आगे यह लिखा है कि " यज्ञों के विषय में आप कुतर्क करते हैं सो पदार्थ विद्या के नहीं होने से क्योंकि घृत दूध और मांसादिकों के यथावत गुण

---

* जितने लेख के तले लकीर खेंची गई है, उसकी पुष्टि में स्वामी जी अपने तारीख ४ नवम्बर सन् १८८० ई० के पत्र में (जो उन्होंने आत्माराम जी को लिखा था) पुस्तक रत्नसार के गौतम महावीर की चर्चा का प्रमाण तो देते हैं, परन्तु यह नहीं समझते कि यह वाक्य उलटा उनकी ही बाधक है ॥

जानते और यज्ञ का उपकार, कि पशुओं को मारने में थोड़ासा दुख होता है परन्तु यज्ञ में चराचर का अत्यन्त उपकार होता है, इनको जो जानते तो कभी यज्ञ विषय में तर्क न करते. वेदों का यथावत् अर्थ के नहीं जानने से ऐसी बात तुम लोग कहते हो कि धूर्त भाण्ड और निशाचरों ने लिखा है, यह बात केवल अपने अज्ञान और संप्रदायों के दुराग्रह से कहते हो और वेद जो है सो सब के वास्ते हितकारी है किसी सम्प्रदाय का ग्रंथ वेद नहीं किन्तु केवल पदार्थ विद्या और सब मनुष्यों के हित के वास्ते वेद पुस्तक है पक्षपात इसमें कुछ नहीं इन बातों को जानते तो वेदों का त्याग और खंडन कभी न करते सो वेद विषय में सब लिख दिया है वही देख लेना और यज्ञ में पशु को मारने से स्वर्ग में जाता है यह बात किसी मूर्ख के मुख से सुन ली होगी ऐसी बात वेद में कहीं नहीं लिखी ॥

(स) स्वामी जी कूप के मेंडुक होकर राजहंस की बराबरी किया चाहैं तो क्योंकर हो, उलटा उपहास्य का कारण है, जैन शास्त्रों के समान तो पदार्थ विद्या का वर्णन अन्य किसी धर्म्म पुस्तक में भी नहीं परन्तु पदार्थ विद्या का जानकार क्या विष्टा वा मूत्रादि मलीन पदार्थों को जानता हुआ उनका भक्षण करने लगेगा। हम लिखते तो बहुत कुछ परन्तु स्वामी जी ने नवीन सत्यार्थ प्रकाश में यज्ञ करने के विधान में पशु वध की आज्ञा हटा दी, इसलिये केवल इतनाही लिखते हैं कि वेद जो सर्व हितकारी हैं तो उनमें पशु वध की आज्ञा है सो जो वध करने में पशु का भला होता है तो इस लाभ से मनुष्य क्यों वञ्चित रक्खा गया और जो भला नहीं होता तो निरापराधी के गले पर छुरी फिरना कितना बड़ा अन्याय है, फिर कहिये इस से अधिक पक्षपात और किसको कहते हैं, और हम जैनी लोग तो सत्य सनातन ईश्वरोक्त वेदों का अर्थ यथार्थ समझते और मानते हैं परन्तु आपही की बुद्धिमें कुछ नवीन चमत्कार मालूम होता है जो एक शब्द को अनेक बार बदलने पर भी भ्रमही में भूल

रहे हो, जब आप के बनाये "सत्यार्थ प्रकाश,, ही एक दूसरे से नहीं मिलते तो अन्य विद्वानों से आप का मत भेद अवश्य ही होना चाहिये ॥

(ग) पुनः पृष्ट ३९८ में पूर्वोक्त लेख से आगे और पृष्ट ४०० पंक्ति २० तक में स्वामी जीने यह लिखा है ॥

जीवों के विषय में वे ऐसा कहते हैं कि जीव जितने शरीर धारी है, उनके पांच भेद हैं, एक इन्द्रिय, द्विन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, और पंचेन्द्रिय जड़ में एक इन्द्रिय मानते हैं, अर्थात् वृक्षादिकों में से यह बात जैनों की विचार शून्य है, क्योंकि इन्द्रिय सूक्ष्म के होने से कभी नहीं देख पड़ती परन्तु इन्द्रिय का काम देखने से अनुमान होता है कि इन्द्रिय अवश्य है सो जितने वृक्षादिकों के बीज हैं उनको पृथिवी में जब बोते हैं वह अङ्कुर ऊपर आता है और मूल नीचे को जाता है सो नेत्रेन्द्रिय उनको नहीं होता तो ऊपर नीचे को कैसे देखता इस काम से निश्चय जाना जाता है कि नेत्रेन्द्रिय जड़ वृक्षादिकों में भी है तथा बहुतलता होती हैं सो वृक्ष, और भीतों के ऊपर चढ़जाती हैं जो नेत्रेन्द्रिय न होती तो उसको कैसे देखता तथा स्पर्शेन्द्रिय तो वेभी मानते हैं, जीभ इन्द्रिय भी वृक्षादिकों में हैं क्योंकि मधुर जल से बागादिकों में जितने वृक्ष होते हैं उनमें खाराजल देने से सूख जाते हैं जीभइन्द्रिय न होता तो स्वाद खारे वा मीठे का कैसे जानते तथा श्रोत्रेन्द्रिय भी वृक्षादिकों में है क्योंकि जैसे कोई मनुष्य सोता होय उसको अत्यन्त शब्द करने से सुन लेता है तथा तोप आदिक शब्द से भी वृक्षों में कम्प होता है जो श्रोत्रेन्द्रिय न होता तो कम्प क्यों होता। क्योंकि अकस्मात् भयङ्कर शब्द के सुनने से मनुष्य पशु पक्षी अधिक कम्प जाते हैं वैसे वृक्षादिक भी कम्प जाते हैं, यदि कोई कहे कि वायुके कम्प से वृक्ष में चेष्टा हो जाती है अच्छा तो मनुष्यादिकों को भी वायु की चेष्टा में शब्द सुन पड़ता है इससे वृक्षादिकों में भी श्रोत्र इन्द्रिय है तथा नासिका इन्द्रिय भी है क्योंकि वृक्षों को

रोग धूप के देने से छूट जाता है, जो नासिका इन्द्रिय न होता तो गन्ध का ग्रहण कैसे करता इस से नासिका इंद्रिय भी वृक्षादिकों में है, तथा त्वचा इन्द्रिय भी है क्योंकि कुमोदिनिकमल लज्जावती अर्थात् छुईमुई औषधि और सूर्य्यमुखी आदिक पुष्पों में और शीत तथा उष्ण वृक्षादिकों में भी ज्ञान पड़ता है क्योंकि शीत तथा अत्यन्त उष्णता से वृक्षादिक कुमला जाते हैं, और सूख भी जाते हैं, इससे तत इन्द्रियों का कर्म देखने से तत् इन्द्रिय वृक्षादिकों में अवश्य मानना चाहिये यह भ्रम जैन सम्प्रदाय वालों को स्थूल गोलक इन्द्रियों के नहीं देखने से हुआ है सो इससे जो लोग इन्द्रियों को नहीं जान सकते परन्तु कार्य्य द्वारा सब बुद्धिमान लोग वृक्षादिकों में भी इन्द्रिय जानते हैं, इसमें कुछ सन्देह नहीं और जहां जीव होगा वहां इन्द्रिय अवश्य होगी, क्योंकि इन सब शक्तियों का जो संघात इसी को जीव कहते हैं, जहां जीव होगा वहां इन्द्रिय अवश्य होगी ॥

(स) स्वामी जी महाराज जब आप को यही मालूम नहीं है कि इन्द्रिय किस को कहते हैं तथा उसका गुण क्या है तो उस पर तर्क करने को क्यों उद्यमी हुये? आप लिखते हो वृक्षादिक के बीज का अँकुर तो ऊपर को आता है, और मूला नीचे को जाता है; इससे उसके चक्षु इन्द्रिय का होना, और मधुर जल से वागादिक में उन्नति और खारे जल से सूख जाने से, उनमें जिव्हा इन्द्रिय का सद्भाव और भयङ्कर शब्द होने से वृक्षादिक का कम्पना सो श्रोत्रेन्द्रिय की सिद्धि तथा वृक्षादिक में धूप देने से रोगादिक का नाश जिससे नासिका इन्द्रिय का होना और छुई, मुई, लज्जावन्ती सूर्य्यमुखी आदिक वृक्षों की चेष्टा से त्वचा इन्द्रिय का होना यह वृक्षादिक में पांचों इन्द्रिय सिद्ध करने के लक्षण और प्रमाण हैं इसको देख कर हम को बड़ा ही आश्चर्य होता है, स्वामी जी महाराज अग्नि प्रज्वलित होने पर धूम्र का ऊर्द्ध गमन करना और सूर्य्य की किरणों के आश्रय हुहिर

जल का ऊंचा उठना तथा कागज़ के बने पतङ्गादिक का आकाश में उड़ना, और मधुर जल से अनेक जलें पदार्थों (लवणादिक) का बिगड़ना और खारी से उत्पन्न होना, तथा भयङ्कर शब्द से अनेक मन्दिर वा बड़े२ मकानों में कम्प होना और अनेक मकानों तथा वृक्ष समूह का गिर पड़ना, प्रकट रूप से देखने में आता है, और जड़ वस्तु में जड़ वस्तु कोही भूनी देने से उसका रोग दूर करते हैं, जैसे सज्जी, चूना, फिटकरी के योग्य से अनेक जड़ वस्तु शुद्ध होती हैं, और चुम्बक पाषाण के अनेक खेल देखने से क्या जड़ पदार्थ को ज्ञानवान मनुष्य जीवधारी मान लेवेंगे? और यह कहना भी स्वामी जी का ठीक नहीं है कि "कार्य्य द्वारा सब बुद्धिमान लोग वृक्षादिक में इंद्रिय मानते हैं,, क्योंकि अनेक प्रकार पुतली मनुष्य वा पशु आकार ऐसी बनाई जाती हैं जो देखने सुनने चाखने सूंघने आदि तथा स्पर्श रस का सम्पूर्ण कार्य्य करती हैं, तो क्या उनको कोई स्वामी जी के समान सजीव समझ सकता है? नहीं बिल्कुल नहीं, जो निर्जीव है वह निर्जीवही है और जो इंद्रियधारी जीव है, सोही सजीव है, क्या इतनी बुद्धि परही आप लिख बैठे कि जैनियों को पदार्थ विद्याका ज्ञान नहीं स्वामी जी महाराज अभी तक आप को इतना भी मालूम नहीं? है कि जीव क्या है? और निर्जीव क्या ? जैन शास्त्रों में चौरासी लक्ष योनि जीव की इस प्रकार कही हैं, पृथ्वी कायलक्ष, ७ अपकायलक्ष, ७ तेजकायलक्ष ७ वायुकायलक्ष, ७ नित्य निगोद लक्ष, ७ इतर निगोद साधारण वनस्पति कायलक्ष, ७ प्रत्येक वनस्पति कायलक्ष, १० देइंद्रियलक्ष२ तीनइंद्रिय लक्ष२ चौइंद्रिय लक्ष२ पंचेन्द्रियलक्ष ४ देवलक्ष ४ नारकीलक्ष ४ मनुष्य लक्ष १४ । और इसके विशेष और भिन्न २ पृथक भेद हैं ।

(ट) पृष्ट ४०० पंक्ति २१ से पृष्ट ४०१ पंक्ति ७ तक स्वामी जी लिखते हैं कि जैनों का ऐसा भी कहना है कि तालाव बावली कूआ नहीं बनवाना क्योंकि इनमें बहुत जीव मरते हैं, जैसे तालाव के रचने से भैंसी उसमें बैठगी, उसके ऊपरमेंघा बै-

ठेगा उसको कौआ लेजायगा और मार भी डालेगा उसका पाप तालाव वनाने वाले को होगा, क्योंकि उस तालाव के जल से असंख्यात जीव सुखी होंगी उसका पुण्य कहां जायगा ? सो पाप के वास्ते तालाव कोई नहीं वनाता किन्तु जीव सुख के वास्ते वनाते हैं इस से पाप नहीं होसक्ता परन्तु जिस देश में जल नहीं मिलता होय उस देश में वनाने से पुण्य होता है, जिस देश में बहुत जल मिलता होवे उस देश में तड़ागादिकों का वनाना व्यर्थ है और वे वड़े२ मन्दिर और वड़े २ घर वनाते हैं उनमें क्या जीव नहीं मरते होंगी सो लाखहा रुपये मन्दिरादिकों में मिथ्या लगा देते हैं, जिनसे कुछ संसार का उपकार नहीं होता और जो उपकार की वात है उसमें दोष लगाते हैं॥

(स) उपरोक्त लेख जैन के किसी भी शास्त्र में नहीं है; इसलिये स्वामी जी का तर्क स्वकपोल कल्पित और सर्वथा मिथ्या है, किन्तु विद्वान पुरुष विचार कर सकते हैं कि जिस धर्म्म में दयाही प्रधान हो उसमें ऐसे कार्यों का करना कैसे बुरा समझा जाय जो लोकोपकारी हो, जैन के सम्पूर्ण कथा पुराणों में जहां नगर ग्राम गढ़ वाटादिक का वर्णन है उन की शोभा के लिये वापीकूप तड़ागादिक का होना अवश्य कहा है सो यदि वापी कूप तड़ागादिक का वनाना बुरा होता तो शास्त्रकार उन को भला क्यों कहते ? हां ! जैसे कोई कृपण पुरुष अपने जीवित वृद्ध पिता को पेट भर भोजन भी नहीं देवे परन्तु मरे हुये की शव पर वहुमूल्य दुशाला डाल कर यह सिद्ध करे कि यह पुत्र निज पिता की वड़ी भक्ति करता होगा तो ऐसा करने से लाभ के वदले उलटी वदनामी है, इसी प्रकार कोई मनुष्य अनेक पाप कर्म करके द्रव्य एकत्रित कर उस से पृथ्वीकाय, जल काय, वायुकाय आदि के असंख्य जीवों का वध कर एक कूप अथवा वापी, तड़ाग वनवाता है वह पुण्य के बदले पापकाही भागी होता है, वापी, कूप, तड़ाग वा मन्दिरादि वनवाना उसी मनुष्य का ठीक है जो वापी कूप तड़ाग वा मन्दिरादिक में ल-

गाये हुये द्रव्य से अधिक द्रव्य किसी अन्य धर्म्म कार्य में भी लगावे और नाम का भूखा न बने, स्वामी जी को मन्दिरों के होने से कुछ लाभ नहीं दीखता यह उनकी पक्षपात और द्वेष भरी उत्तम समझ का फल है ॥

(द) पृष्ठ ४०१ पंक्ति ८ से स्वामी जी लिखते हैं" फिर कहते हैं कि जैन का धर्म्म श्रेष्ठ है, और इस के बिना मुक्ति भी किसी को नहीं होती सो यह बात उनकी मिथ्या है, क्योंकि ऐसी बात और ऐसे कर्मों से मुक्ति कभी नहीं होसक्ती मुक्ति तो मुक्ति के कर्म्मों से सर्वत्र होती है अन्यथा नहीं ॥

(स) धर्म्म के चिन्ह दया १ (अहिंसा) अदत्तादान न लेना २ (चोरी का त्याग) मैथुन का त्याग ३ सत्य भाषणकरणा ४ सन्तोष धारना ५ यह पांच मुख्य हैं, सो जिसने वन्ध्यागाय को मार कर यज्ञ हवन करने की तथा मांस भक्षण की आज्ञा दई और वृक्षादिक को पांच इन्द्रिय वाला लिखा। स्त्री जहां से मिले ले लेनी कही। एक स्त्री ११ पति तक नियोग करे यह लिखा। वेदों के अर्थ मनमाने स्वकपोल कल्पित बना दिये। और संन्यासी होकर पुस्तक बेचना छापाखाना खोलना द्रव्य पास रखना भला समझा वह जैन धर्म्म को क्या किसी धर्म्म को भी अच्छा नहीं समझेगा परन्तु जैनी लोग यह हट नहीं करते कि धर्म्म जैन का ही अच्छा है, किन्तु वे कहते हैं कि जिस धर्म्म में हिंसा १ झूठ २ चोरी ३ मैथुन ४ का त्याग और परिग्रह प्रमाण यथार्थ पणों पाया जावे वही उत्तम और श्रेष्ठ धर्म्म है ॥

(द) फिर देखो पृष्ठ ४०१ पंक्ति ११ से स्वामी जी लिखते हैं "जितना मूर्ति पूजन चला है सो जैनीयों से चला है, यह भी अनुपकार का कार्म है, इससे कुछ उपकार नहीं संसार में जिना अनुपकार के सो जैनों को बड़ा भारी आग्रह है जो कोई कुछ पुण्य किया चाहता है धनाढ्य को मन्दिरही बना देता है और प्रकार का दान पुण्य नहीं करते हैं ॥

(ए) स्वामी जी वाल्मीकीय रामायण को जैन धर्म्म से प-

छिले लिखी गई समझी हुयी हैं, और उसके सर्ग ४४ श्लोक ४२, ६३ में लिखा है कि रावण शिवमूर्ति की पूजन करता था तो फिर किस मुंह से लिखते हैं कि मूर्तिपूजा प्रथम जैनियों से ही चली है, और मूर्तिपूजा से जो कुछ देशोपकार होता है उस विषय के तो जक्त में अनेक लेख पुस्तकादि विद्यमान हैं, जिनका यहां लिखना व्यर्थ है, और जैनियों से बराबर पुण्यदान करने वाला तो दूसरा होना ही कठिन है, परन्तु आर्य्य समाज में शामिल होने तथा स्वामीजी कृत वेदभाष्य वा सत्यार्थ प्रकाशादि व्यर्थ पुस्तकों के खरीदने से जैनियों का मुंह मोड़ना स्वामी जी को उनका कृपण होना सिद्ध होता है। खूब॥

(ढ) पुनः पृष्ठ ४०१ पंक्ति १५ से स्वामी जी यह लिखते हैं कि उनने जैन गायत्री भी एक बना लई है और एक यती होते हैं उनको श्वेताम्बर कहते दूसरा होता है दिगम्बर जिसको मुनि और श्रावक कहते हैं उनमें से ढूंढिये लोग मूर्तिपूजन को नहीं मानते और लोग मानते हैं उनमें एक श्रीपूज्य होता है उसका ऐसा नियम होता है कि इतना धन जब सेवक लोग दें तब उस के घर में जाय और मुनिदिगम्बर होते हैं वे भी उनके घर में जब जाते हैं तब आगे आगे थान बिछाते चले जाते हैं। और उनके मत में न होय वह श्रेष्ठ भी होते तो भी उसको सेवा अर्थात् जल तक भी नहीं देते (१) यह उनका पक्षपात से अनर्थ है

(१) जिस लेख के नीचे लकीर खेंची गई है उसकी पुष्टि के लिये भी स्वामी जी अपने ४ नवम्बर सन् १८८० ई० के पत्र में (जो आत्माराम जी को लिखा था) लिखते हैं कि पुस्तक देकसार पृष्ठ २२१ पंक्ति ३ से लेकर पंक्ति ८ तक लिखा है देख लीजिये। परन्तु यह प्रमाण स्वामी जी का सर्वथा झूठ है, उक्त पुस्तक के पूर्वोक्त लेखका वह आशय नहीं है जो स्वामीदयानन्द सरस्वती ने समझा और अपने रागियों को जिस से भ्रम में डाला है॥

किन्तु जो श्रेष्ठ होय उसकी सेवा करनी चाहिये दुष्ट की कभी नहीं यह सब मनुष्यों के वास्ते उचित है॥

(क) हम पूछते हैं क्या जैन गायत्री स्वामी जी के सामने जैनों ने बनाई थी? या किसी पुस्तक में उसके बनाये जाने का समय लिखा है? जो यह सिद्ध हो कि अवश्य वह अमुक काल में बनी थी? स्वामी जी तर्क करने पर तो उद्यमी होगये परन्तु यह नहीं जानते श्वेताम्बर किसको कहते हैं और दिगम्बर किसको और मुनि वा श्रावक तथा जैनी वा श्रावक में क्या भेद है? ढूंढिये लोग कब से? कहां से और क्यों उत्पन्न हुये? श्रीपूज्य इनमें होता है कि नहीं? स्वामी जीने भोजन के समय किस साधु को द्रव्य लेते देखा? जिसका छूना भी साधु को उचित नहीं है, और जो नग्न दिगम्बर होगया वह थानों के ऊपर क्योंकर पाव रख सकता है, वर्तमान समय में श्रेष्ठ द्रव्यवान को कहते हैं, और द्रव्य स्वतः पाप का कारण है सो जैनी लोग द्रव्य के लोलपी नहीं किन्तु त्यागी होते हैं द्रव्यवान को अपना कल्याणकारी नहीं समझे तो क्या दोष है? परन्तु पूर्वोक्त लेख स्वामी जी का सर्वथा मिथ्या है, जैनी लोग वृथा कर्म के वांरी कभी भी किसी से द्वेष बुद्धि नहीं रखते। इस लेख में स्वामी जी को पक्षपात के कारण भ्रम उत्पन्न होगया है॥

(ख) फिर स्वामी जी पृष्ठ ४०१ की अंतिम पंक्ति से पृष्ठ ४०२ पंक्ति ८ तक लिखते हैं कि"

जो ढूंढिये होते हैं उनके केश में जूआ पड़ जाय तौभी नहीं निकालते और हजामत नहीं बनवाते किन्तु उनका साधु जब आता है तब जैनी लोग उसकी डाढ़ी मोंछ और सिर के बाल नोच लेते हैं (१) जो उस वक्त वह शरीर कंपावे अथवा नेत्र से

---

(१) जिस लेख के नीचे लकीर खैंची गई है, उसके खण्डनार्थ भी स्वामी जी ने अपने ४ नम्बर सन् १८८० ई० के पत्र में कुछ लिखा है परन्तु सब मिथ्या है॥

डाल गिरावे तब सब कहते हैं कि यह साधु नहीं भयाहै क्योंकि इसको शरीर के ऊपर मोह है विचार करना चाहिये कि ऐसी २ पीड़ा और साधुओं को दुःख देना और उनके हृदय में दया का लेश भी नहीं आता यह उनकी बात बहुत मिथ्या है क्योंकि बालों के नोचने से कुछ नहीं होता जब तक काम क्रोध लोभ मोह भय शोकादिक दोष हृदय से नहीं नोचे जायंगे यह ऊपर का सब ढोंग है ॥

(स) ऊपर लिखा लेख सर्वथा झूठ और स्वामीजी की स्वकपोल कल्पना है, क्योंकि प्रथम तो हजामत का बनवानाही थोड़े दिनों से चला है इस से पहिले सम्पूर्ण पृथ्वी पर केश लोच करने ही का प्रचार था और जुआं भी उसी मनुष्य के पड़ती है जो संसारिक कार्य्यों में फंसा रह कर काम भोग शृहारम्भ में निमग्न रहता है, साधुजन जो नियत समय पर लोच कर लेते हैं और सदैव शुद्ध रहते हैं क्यों जुआदिक के दुःख उठा सकते हैं और जो किसी कर्म योग पड़ भी जायँ तो लोचके समय अवश्य जुदी हो जाती हैं कुछ उनके शिर पर नाचने वाले लड़कों के समान केश समूह नहीं होता जो उनको सदैव धोने बहाने तैलादिक लगाने का श्रम करना पड़े, और जैनी लोग साधुओं के बाल नहीं नोचते, यह स्वामी जी का भ्रम है कि जैनी नोचते हैं ॥

(द) फिर पृष्ट ४०२ पंक्ति ८ से स्वामी जी ने लिखा है कि उनमें जितने आचार्य्य भये हैं उनके बनाये ग्रन्थों को वेद मानते हैं सो १८ ग्रन्थ वे हैंतथा महाभारत रामायण पुराण स्मृतियां भी उन लोगोंने अपने मतके अनुकूल ग्रंथ बना लिये हैं अन्य भगवती गीता ज्ञान चारित्रादिक भी ग्रंथ नाना प्रकारके बना लियेहैं उनमें अपने सम्प्रदाय की पुष्टि और अन्य सम्प्रदायों का खंडन कपोल कल्पना से अनेक प्रकार लिखा है जैसे कि जैन मार्ग सनातन है प्रथम सब संसार में जैन मार्ग था परन्तु कुछ दिनों से जैन मार्ग को छोड़ दिया है लोगों ने सो बड़ा अन्याय है क्योंकि जैन मार्ग छोड़ना किसी को उचित नहीं है, ऐसी २ कथा अपने

ग्रन्थों में जैनों ने लिखी हैं सो सब सम्प्रदाय वाले अपनी २ कथा ऐसीही लिखते हैं और कहते हैं, इसमें प्रायः अपने मत-लब के लिये बातें मिथ्या २ बना लई हैं ॥

(घ) जब हम यह देखते हैं कि स्वामी जी ने ५८ वर्ष की आयु तक बहु परिश्रम द्वारा जैन ग्रन्थों का खोज लगाया और दोबार सत्यार्थ प्रकाश के द्वादश समुल्लास में उसका वर्णन किया परन्तु यथार्थ भेद न पाया और प्रथम बार के छपे सत्यार्थ प्रकाश में जो नाम जैन ग्रन्थों के लिख दिये थे नवीन सत्यार्थप्रकाश की भूमिका में उनके प्रतिकूल मनमाना लिख दिया यथार्थ भेद से वंचित ही रहे तो उपरोक्त लेख पर आलोचना करने की कुछ आवश्यकता नहीं है क्योंकि इस विषय में स्वामी जी के स्वतः लेखों से पाया जाता है कि उनके भ्रम की अभी तक निवृत्ति नहीं हुई है, और जहां स्वामी जीने भारत के सम्पूर्ण धर्म्मों का निन्दा करी है वहां यदि जैन की बुराई नहीं करते तो पक्ष पाती समझे जाते उनको सब के साथ में जैनियों को भी बुरा बतलाना उचित ही था और जैन नवीन हैं वा सनातन इस वि-षय पर "दयानन्द छल कपट दर्पण प्रथम भाग" में सविस्तार लेख किया गया है ॥

(ङ) पृष्ठ ४०२ पंक्ति २० से पृष्ठ ४०३ पंक्ति १८ तक निम्न लिखित श्लोक और कुछ लेख लिखा है ॥

नैववर्णाश्रमादीनां क्रियाश्चफलदायिकाः ॥
अग्निहोत्रंत्रयो वेदाख्रिदंडं भस्मगुण्ठनम् ॥ ५ ॥
बुद्धिपौरुषहीनानांजीविका धातृनिर्मिता॥
पशुश्चेन्निहतःस्वर्गं ज्योतिष्टोमेगमिष्यति ॥ ६ ॥
स्वपितायजमानेन तत्रकस्मान्न हिंस्यते -
मृतानामपिजन्तूनां श्राद्धंचेत्तृप्तिकारणम् ॥ ७ ॥
गच्छतामिहजन्तूनां व्यर्थंपाथेयकल्पनम् ॥
स्वर्गस्थितायदातृप्तिंगच्छेयुस्तत्रदानतः ॥ ८ ॥
प्रासादस्योपरिस्थाना मत्रकस्मान्नदीयते ॥
यदिगच्छेत्परंलोकं देहादेपविनिर्गतः ॥ ९ ॥
कस्माद्भूयोनचायाति बन्धुस्नेहसमाकुलः ॥
मनश्चजीवनोपायो ब्राह्मणैर्विहितस्त्विह ॥ १० ॥
मृतानांप्रेतकार्याणिनत्वन्यद्विद्यतेक्वचित् ॥
त्रयोवेदस्यकर्तारो भण्डधूर्तनिशाचराः ॥ ११ ॥
जर्फरीतुर्फरी त्यादिपण्डितानां वचःस्मृतम् ॥
अश्वस्यात्रहि शिश्नन्तुपत्नी ग्राह्यंप्रकीर्तितम् ॥ १२ ॥
भण्डैस्तद्वत्परं चैवग्राह्यजातं प्रकीर्तितम् ॥
मांसानांखादनं तद्वन्निशाचर समीरितम् ॥ १३ ॥

इत्यादिक श्लोक जैनोंने बना रक्खे हैं और अर्थ तथा काम,दोनों पदार्थ मानते हैं लोक सिद्ध जो राजा सोई परमेश्वर और ईश्वर नहीं पृथ्वी जल अग्नि वायु इनके संयोग से चेतन उत्पन्न होके इन्हीं में लीन हो जाता है और चेतन पृथक् पदार्थ नहीं ऐसेर प्राकृत दृष्टांत देके निर्बुद्धि पुरुषों को बहका देते हैं जो चार भूतों को योग में चेतन उत्पन्न होता तो अब भी कोई चारभूतों को मिला के चेतन दिखला दे सो कभी नहीं देख पड़ेगा इन स्वभाव से जगत की उत्पति आदिक का उत्तर ईश्वर और सृष्टि के विषय में लिख दिया है वहीं देख लेना॥

(घ) पूर्वोक्त लेख स्वामी जी ने बिना विचारे पुस्तक सर्व दर्शन संग्रह से लेकर लिखे और उक्त पुस्तक के लिखने वाले ने

बृहस्पति नास्तिक ग्रंथांसे लिया है, और जो पत्र स्वामी जी ने तारीख ४ नवम्बर सन् १८८० ई० को आत्मराम जी के नाम लिखा उसके प्रश्न ६ के उत्तर में भी अपने झूठ वचन का पालन ही किया है परन्तु यह हट धर्मी और लेख सर्वथा मिथ्या और जैन धर्म्म से भिन्न है, अच्छा हुआ जो स्वामी जी ने नवीन सत्यार्थ प्रकाश में इसको स्वतः ही जैन का नहीं कहा. और चार्वाक का मान लिया, नहीं तो हमको इसका यथार्थ भेद और स्वामी जी की अधिक पोल खोलनी पड़ती और पृष्ट ४०२ पंक्ति १८ से आगे पृष्ट ४०७ के अन्त तक स्वामी जीने जो कुछ लिखा वह जैन के किसी भी ग्रन्थ का लेख नहीं है किन्तु वह सूत्र शाक्य मुनि गौतम कृत बौद्ध धर्म के हैं जिनको स्वामी जी ने अपने अज्ञान पने से जैन का समझ उन पर आलोचना करी है अस्तु ॥

(ह) भूतेभ्यो मूर्त्युपादानवत्तदुपादानम् इत्यादिक गौतम मुनि जी के किये सूत्र नास्तिकों के मत दिखाने के वास्ते लिखे जाते हैं और उनका खंडन भी, सो जान लेना जैसे पृथिव्यादिक भूतों से वालु पाषाण गेरू अंजनादिक स्वभाव से कर्ता के बिना उत्पन्न होते हैं, वैसे मनुष्यादिक भी स्वभाव से उत्पन्न होते हैं न पूर्वापर जन्म न कर्म्म और न उनका संस्कार किन्तु जैसे जल में फेन तरङ्ग और बुद्बुदादिक अपने आप से उत्पन्न होते हैं वैसे भूतों से शरीर भी उत्पन्न होता है उससे जीव भी स्वभाव से उत्पन्न होता है उत्तर न साध्य समत्वात् २ गौ० जैसे शरीर की उत्पत्ति कर्म संस्कार के बिना सिद्ध मानते हो, वैसे वालुकादिक की उत्पत्ति सिद्ध करो वालुकादिकों के पृथिव्यादिक प्रत्यक्ष निमित्त और कारण हैं वैसे पृथिव्यादिक स्थूल भूतों का कारण भी सूक्ष्म मानना होगा ऐसे अनवस्था दोष भी आजायगा और साध्य सम हत्वा भास के नाईं यह कथन होगा, और इस से देहोत्पति में निमितान्तर अवश्य तुमको मानना चाहिये नोत्पति निमित्त त्वान्मातापित्रोः ३ गौ० यह नास्तिक का अपने पक्ष का समाधान है, कि शरीर की उत्पत्ति का निमित्त माता और पिता है जिन

से कि शरीर उत्पन्न होता है, और वालुकादिक निर्बीज उत्पन्न होते हैं इस से. साध्यसम दोष हमारे पक्ष में नहीं आता। क्योंकि माता पिता खाना पीना करते हैं उस से वीर्य बीजशरीर का होजायगा उत्तर "प्राप्तोश्चानियमात् ४ गो०„ ऐसा तुम मत कहो क्योंकि इसका नियम नहीं माता और पिता का संयोग होता है और वीर्य भी होता है तोभी सर्वत्र पुत्रोत्पत्ति नहीं देखनेमें आती इससे यह जो आप का कहा नियम सो भंग होगया इत्यादिक नास्तिक के खण्डन में न्याय दर्शन में लिखा है जो देखा चाहे सो देख ले॥

(स) ऊपर लिखे लेख का जैन धर्म्म से कुछ सम्बन्ध नहीं इसलिये समीक्षा करने की क्या आवश्यकता है?

(द) दूसरे नास्तिक का ऐसा मत है कि अभावाद्भावोत्पत्तिर्नानुपमृद्यप्रादुर्भावात् ५ गो० अभाव अर्थात् असत्य से जगत की उत्पत्ति होती है क्योंकि जैसे बीज का नाश करके अंकुर उत्पन्न होता है वैसे जगत की उत्पत्ति होती है, उत्तर व्याघाताद्प्रयोगः ६ गो० यह तुम्हारा कहना अयुक्त है क्योंकि व्याघात के होने से जिसका मर्द्दन होता है बीज के ऊपर भाग का वह प्रकट नहीं होता है और जो अङ्कुर प्रकट होता है उसका मर्दन नहीं होता इस से यह कहना आप का मिथ्या है॥

(स) यह ऊपर लिखा हुआ लेख भी जैनियों से कुछ सम्बन्ध नहीं रखता है॥

(द) तीसरे नास्तिक का मत ऐसा है ईश्वरः कारणं पुरुष कर्माफल्य दर्शनात् ७ गो० जीव जितना कर्म कर्ता है उसका फल ईश्वर देता है, जो ईश्वर कर्म फल न देता तो कर्म का फल कभी न होता क्योंकि जिस कर्म का फल ईश्वर देता है, उसका तो होता है और जिसका नहीं देता उसका नहीं होता इस से ईश्वर कर्म का फल देने में कारण है, उत्तर पुरुषकर्माभावेफलानिष्पत्तेः ८ गो० जो कर्म फल देने में ईश्वर कारण होता तो पुरुष कर्म कर्ता तोभी ईश्वर फल देता सो विना कर्म करने से जीव

को फल नहीं देता इस से क्या जाना जाता है कि जो जीव कर्म जैसा करता है वैसा फल आपही प्राप्त होता है इस से ऐसा कहना व्यर्थ है ॥

(स) यहां स्वामी जी ने नास्तिक को तो ईश्वरवादी और अपने आप को नास्तिक सिद्ध किया है, धन्य महाराज धन्य ! क्या अच्छी बुद्धि है ॥

(द) फिर भी वहीं अपने पक्ष को स्थापन करने के वास्ते कहता है कि तत्कारितत्वादहेतुः ८ गो० ईश्वरही कर्म का फल और कर्म कराने में कारण है जैसा कर्म कर्ता है वैसा जीव करता है अन्यथा नहीं, उत्तर जो ईश्वर कराता तो पाप क्यों कराता और ईश्वर के सत्य संकल्प के होने से जीव जैसा चाहता है वैसाही हो जाता और ईश्वर पाप कर्म करा के फिर जीव को दण्ड देता तो ईश्वर को भी जीव से अधिक अपराध होता तो उस अपराध का फल जो दुःख सो ईश्वर को भी होना चाहिये और केवल छली कपटी और पोपों के कराने से पापी हो जाता इस से ऐसा कभी न कहना चाहिये कि ईश्वर कराता है ॥

(स) प्यारे पाठक इन्द खयाल करने की बात है यहां स्वामी जी ईश्वरोपासिक होकर भी अनीश्वरवादी बनने की इच्छा रखते हैं, और यह लेख भी जैनी लोगों से कुछ सम्बन्ध नहीं रखता है ॥

(द) चौथे नास्तिक का ऐसा मत है कि अनिमित तो भावोत्पत्तिः कण्टक तैक्ष्ण्यादि दर्शनात् १० गो० निमित्त के बिना पदार्थों की उत्पत्ति होती है, क्योंकि वृक्ष में कांटे होते हैं वेभी निमित्त के बिनाही तीक्ष्ण होते हैं कण्टकों की तीक्ष्णता पर्वत धातुओं की चित्रता पाषाणों की चिक्कनता जैसे निमित देखने में आती है वैसेही शरीरादिक संसार की उत्पत्ति कर्ता के बिना होती है इसका कर्ता कोई नहीं उत्तर अनिमित अनिमित्तान्निमित्तः ११ गो० बिन निमित्त के सृष्टि होती है ऐसा मत कहो क्योंकि जिस से जो उत्पन्न होता है वही उसका निमित है वृक्ष

पर्वत पृथिव्यादिक उनके निमित्त जानना चाहिये वैसेही पृथिव्यादिक की उत्पत्ति का निमित्त परमेश्वरहीहै इस से तुम्हारा कहना मिथ्या है ॥

(म) यह ऊपर लिखा लेख भी जैनका नहीं, किन्तु बौद्धोंकाहै, ॥

(द) पांचवें नास्तिक का ऐसा मत है कि सर्वमनित्य मुत्पत्ति विनाश धर्मकत्वात् १२ गो० सब जगत अनित्य है क्योंकि सबकी उत्पत्ति और विनाश देखने में आता है जो उत्पत्ति धर्म्म वाला है सो अनुत्पन्न नहीं होता जो अविनाश धर्म्म वाला है सो विनाश कभी नहीं होता, आकाशादि भूत शरीर पर्यन्त स्थल जितना जगत है और बुद्यादि सूक्ष्म जितना जगत है सो सब अनित्यही जानना चाहिये। उत्तर नानित्यतानित्यत्वात् १३ गो० सब अनित्य नहीं है क्योंकि सब की अनित्य होगी तो उस के नित्य होने से सब अनित्य नहीं भया और जो अनित्यता अनित्य होगी तो उसके अनित्य होने से सब जगत नित्य भया इस से सब अनित्य है ऐसा जो आप का कहना सो अयुक्त है फिर भी वह अपने मत को स्थापन करने लगा तद नित्यत्वमग्नेर्दाह्यं विनाश्यानुविनाशवत् १४ गो० वह जो हमने अनित्यता जगत् की कही सो भी अनित्य है क्योंकि जैसे अग्नि काष्ठादिक का नाश करके अपने भी नष्ट होजाता है वैसे जगत् को अनित्य कर के आप भी अनित्यता नष्ट होजाती है। उत्तर नित्यस्याप्रत्याख्यानयथोपलब्धिव्यवस्थानत् १५ गो० नित्य का प्रत्याख्यान् अर्थात् निषेध कभी नहीं हो सकता क्योंकि जिसकी उपलब्धि होतीहै और जो व्यवस्थित पदार्थ है उसकी अनित्यता नहीं हो सकती जो नित्य है प्रमाणों से और जो अनित्य सो नित्य नित्य ही होता है और अनित्य अनित्यही होता है क्योंकि परमसूक्ष्म कारण जो है सो अनित्य कभी नहीं होसकता और नित्य के गुण भी नित्य हैं तथा जो संयोग से उत्पन्न होता है और संयुक्त के गुण वे सब अनित्य हैं नित्य कभी नहीं होसक्ते क्योंकि पृथक् पदार्थों का संयोग होता है वो फिर भी पृथक् होजाते हैं इसमें

कुछ सन्देह नहीं ॥

(स) यह लेख भी जैन का नहीं बौद्धों का है ॥

(द) छःट्ठा नास्तिक यह है कि सर्वं नित्यं पंचभूतनित्यत्वात् १६ गो० जितना आकाशादिक यह जगत् है जो कुछ इन्द्रियों से स्थूल वा सूक्ष्म जान पड़ता है सो सब नित्यही है पांच भूतों के नित्य होने से, क्योंकि पांच भूत नित्य हैं उनसे उत्पन्न भया जो जगत् सोभी नित्यही होगा। उत्तर नोत्पत्तिविनाश कारणोंपलब्धेः १७ गो० जिसका उत्पत्ति कारण देख पड़ता है और विनाश कारण वह नित्य कभी नहीं होसक्ता इत्यादिकं समाधान न्याय दर्शन में लिखा है सो देख लेना ॥

सातवां नस्तिक का मत यह है कि सर्वं पृथक् भाव लक्षण पृथक्त्वात् १८ गो० सब पदार्थ पृथक् २ ही है, क्योंकि घट पटादिक पदार्थों के पृथक् २ चिन्ह देख पड़ते हैं इस से सब वस्तु पृथक् २ ही हैं एक नहीं। उत्तर नानेकलक्षणैरेक १९ गो० गंधादिक गुण हैं और सुखादिक घड़े के अवयव भी अनेक पदार्थों से एक पदार्थ युक्त प्रत्यक्ष देख पड़ता है इस से सब पदार्थ पृथक् २ है ऐसा जो कहना सो आप का व्यर्थ है ॥

आठवां नास्तिक का मत यह है कि सर्वं अभावो भावष्वितर तराभावसिद्धेः २० गो० यावत जगत् है सो सब अभावही है क्योंकि घड़े में वस्त्र का अभाव और वस्त्र में घड़े का अभाव तथा गाय में घोड़े का और घोड़े में गाय का अभाव है इस से सब अभावही है। उत्तर नस्वभावसिद्धेर्भावानाम् २१ गो० सब अभाव नहीं है क्योंकि अपने में अपना अभाव नहीं होता है और जो अभाव होता तो उसको प्राप्ति और उससे व्यवहार सिद्धि कभी नहीं होती इससे सब अभाव है ऐसा जो कहना सो व्यर्थ है क्योंकि आपही अभाव हो फिर आप कहते और सुनते हो सो कैसे बनता सो कभी नहीं बनता ऐसे २ वाद विवाद मिथ्या जो करते हैं वे नास्तिक गिने जाते हों

(ध) यह ऊपर लिखा हुआ सम्पूर्ण लेख जैनधर्म्म से भिन्न

और स्वामी जी की मन कल्पना है, और यह बौद्ध लोगों का ही मत है, ॥

(द) सो जैन सम्प्रदाय में अथवा किसी सम्प्रदाय में ऐसा मतवाला पुरुष होय उसको नास्तिक ही जान लेना जैन लोगों में प्रायः इस प्रकार के बाद हैं वे सब मिथ्याही सज्जनों को जानना चाहिये यजमान की पत्नी अश्व के शिश्न को पकड़े यहबात मिथ्या है तथा संसार में राजा जो है सोई परमेश्वर है यह भी बात उनकी मिथ्या है क्योंकि मनुष्य क्या कभी परमेश्वर हो सकता है धर्म्म को बड़ा न समझना और अर्थ तथा काम कोही उत्तम समझना यह भी उनकी बात मिथ्या है इत्यादिक बहुत उनके मत में मिथ्या २ कल्पना हैं उनको सज्जन लोग कभी न माने इति ॥

(ध) उपरोक्त लेख का विशेष भाग नास्तिक चार्वाक मत का है, स्वामी जी अपने अज्ञानपने से इसको यहां तो जैनियों का लिख गये किन्तु जब ठाकुरदास आदि जैनियों ने प्रमाण मांगा तब कुछ समय तक तो अनेक प्रपंच भरे उत्तर देते रहे, कभी पुस्तक देकसार का सहारा लिया, कभी कल्पभाष्य को जादेखा, कभी यह उत्तर लिखा आप को शुद्ध भाषा लिखनाही नहीं आता, परन्तु जब कोई प्रपंच भी कार्य्यकारी न हुआ तो पश्चात् नवीन सत्यार्थ प्रकाश में यह स्वतः स्वीकार कर लिया कि यह लेख नास्तिक चार्वाक मत का है, और फिर भी अपने हठ धर्म्म को स्थिर रखने के लिये जैन बौद्ध चार्वाक तीनों को मिश्रित लिख दिया सो उसका भी यथार्थ उत्तर नवीन "सत्यार्थप्रकाश,, की समीक्षा में लिखा जायगा अब यहां तक पुराने प्रथमबार के छपे "सत्यार्थप्रकाश,, के द्वादश समुल्लास की समीक्षा और कुछ दयानन्द दिग्विजयार्कान्तरगत जैनधर्म्म सम्बन्धी लेख का उत्तर पूरा हुआ और आगे नवीन "सत्यार्थप्रकाश,, के विषय लेख होगा, इसलिये इस "जैनसुधाबिन्दु,, नाम पुस्तक का पूर्वार्द्ध भाग इसी स्थान पर पूरा होता है ॥ इत्यलम् ॥

शुद्धाशुद्ध पत्र ॥

पृष्ट	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
भूमिका	१४	खण्डम	खण्डन
२	५	होता है तव पुङ्गल	होता है तव पुङ्गल
३	५	करता	करते
,,	२०	धम्म	धर्म्म
४	११	मैथुंनच	मैथुनंच
७	२	पश आदि	पशु आदि
८	९	निद्रामय	निद्राभय
१२	१७	दुःखदि	दुःखादि
,,	१९	जम्न	जन्म
१५	२१ व २४	स्त्रोत्रेन्द्रिय	श्रोत्रेन्द्रिय
१७	२९	तालव	तालाव
१८	३	असख्यात	असंख्याते
,,	,,	सुखो	सुखी
,,	१६	पुराणों	पुराणों में
१९	२१	पर्गों	पगों
२०	१९	होते	होतो
२१	१३	र्तमान	वर्तमान
,,	२४	मोच्च	मोक्ष
२२	३	हृदय	हृदय
२३	१४	का	की
,,	२१	न्नस्ति	नास्ति
२५	१९	सत्र यद्व है	सूत्र यम है
२७	१५	पोपों	पापों
,,	२३	ह्रष्ठ	हृष्ट

ला० रामनाथ द्वारा भार[illegible]स मेरठ में सिर्फ टाईटल पेज छपा